# पर्यावरणीय टिकाऊ कृषि पद्धति

खेती एक पेशे और जीवन पद्धति के तौर पर प्रकृति पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर है। आशा मानती है कि कृषि की पर्यावरणीय निरंतरता जटिल रूप से खेती की आजीविका की निरंतरता से जुड़ी हुई है। अगर वह उत्पादक संसाधन जिन पर खेती आधारित है उनका अपक्षरण व ह्रास होता है तो स्पष्ट है कि कृषि आधारित आजीविका पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

भारत सरकार की पर्यावरण की स्थिति रिपोर्ट 2009 के अनुसार कृषि विकास के पर्यावरण पर सीधे प्रभाव सघन कृषि गतिविधियों से उपजते हैं जो मिट्टी के अपक्षरण , जमीन के क्षारीयकरण और पोषण तत्वों की कमी के लिये जिम्मेदार होती हैं। देश में हरित क्रान्ति के आने के साथ भू और जल संसाधनों का अत्यधिक दोहन और खाद तथा कीटनाशकों का अत्यधिक इस्तेमाल होने लगा। दशकों तक सघन रसायन आधारित खेती से प्य्रावरण को हुआ नुकसान अधिक साफ होता जा रहा है और किसान बड़े पैमाने पर प्रतिकूल नतीजों का सामना कर रहे हैं। मिट्टी की सेहत और उपजाऊपन में बहुत ज्यादा गिरावट आई है। खेत का पारिस्थितिकी तंत्र जिसमें केंचुए , लाभकारी कीट , पक्षी और विविध वनस्पति शामिल हैं बुरी तरह ध्वस्त हो गया है। जल प्रणाली जहरीली हो गई है और भूजल कम होते जाने से व्यापक स्तर पर डार्क जोन बन गये हैं। मिट्टी का उपजाऊपन खाद उपयोग पर औसत फसल में दिखायी देता है जो 1960 के दशक में प्रति किलोग्राम खाद पर 25 किलोग्राम अनाज था वह 1990 के दशक के अंत में घटकर आठ किलोग्राम प्रति किलोग्राम खाद रह गया है। यह सब को पता है कि सरकार का रसायन उर्वरक अनुदान व्यय एक लाख करोड़ हो गया है। वर्तमान चलन को देखते हुए यह अनुमान है कि अगले 20 वर्षों में 60 प्रतिशत भूजल स्रोत

समाप्ति के नाजुक दौर में होंगे। कीटनाशकों का जहर हर साल हजारों किसानों को मार रहा है, कीटनाशक अवशिष्ट और कृषि रसायनों से हो रहा जल प्रदूषण को कैंसर, पुनरुत्पादन संबंधी स्वास्थ्य समस्या , अंगों की क्षति और प्रतिरोधक क्षमता कम होने से जोड़कर देखा जा रहा है। हमारी खेती में रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों के कारण हो रही विभिन्न पर्यावरणीय एवं पर्यावरणीय स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं की पहचान करना और उनका सीधा समाधान करना महत्वपूर्ण है। जैव संरक्षा और अन्य चिंताओं को दरकिनार कर जीएम फसलों की ओर एक अंधी दौड़ दिखाई देती है। आवश्यकता, उपलबध विकल्पों, जैविक संरक्षा, किसान एवं व्यापार सुरक्षा का आकलन किये बिना जीएम फसलों को पर्यावरण में जारी करना किसानों, उपभोक्ताओं और हमारे पर्यावरण के लिये विनाशकारी होगा।

इसके अतिरिक्त सघन हरित क्रान्ति के प्रतिमान को सभी परिस्थितियों के लिये लागू कर दिया गया जिसमें देश के कम वर्षा वाले इलाके भी शामिल थे जिससे खेती में जोखिम बढ़ गया। सरकार इस तरह की सघन और गैर टिकाऊ खेती के प्रतिमान को बढ़ावा देने के लिये लोक निधि से अनुदान देती है लेकिन उन किसानों के लिये किसी तरह का प्रोत्साहन नहीं है जो पर्यावरणीय तौर पर टिकाऊ खेती करते हैं जो प्राकृतिक संसाधनों को खत्म करने की बजाय उन्हें मजबूत करती है और देश के लिये टिकाऊ खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं।

यह देखते हुए कि कृषि का मौजूदा मॉडल प्रौद्योगिकी के प्रति अब थकावट और प्राकृतिक संसाधनों तथा आर्थिक पूंजी (भारत की पंचवर्षीय योजना प्रक्रिया में भी स्वीकार किया गया है) का विनाश परिलक्षित कर रहा है , तात्कालिक आवश्यकता भारतीय कृषि को फिर से पर्यावरणीय

टिकाऊ मॉडल की ओर ले जाने की है। विश्व के अग्रणी संगठनों के स्वतंत्र और तटस्थ आकलनों में भी इसका समर्थन किया गया है। यह देखते हुए कि देश के लाखों किसानों की आजीविका पर्यावरण संसाधनों की स्थिति से बेहद करीब से जुड़ी हुई है तत्काल यह बदलाव किया जाना जरूरी है। यहां पर कम वर्षा की खेती और पिछले दशकों में उसकी उपेक्षा का विशेष उल्लेख करना होगा। कम वर्षा वाले इलाकों में गरीबी की ऊंची दर, अल्प शिक्षा और स्वास्थ्य स्तर, संकटग्रस्त खेती, रोजगार अवसरों की अल्पता और पलायन एवं अधिक जोखिम के हालात देखे जाते हैं। साझा जलसंग्रहण विकास परियोजनाओं के साथ ही इन क्षेत्रों में निरंतर व सतत तरीकों से पैदावार बढ़ाने तथा आजीविका सुरक्षा में योगदान देने के लिये समेकित कृषि प्रणाली अपनाने की सलाह दी जाती है।

हाल में विश्व बैंक और संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों जैसे खाद्य एवं कृषि संगठन, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम, जीईएफ, यूनेस्को और विश्व स्वास्थ्य संगठन ने महसूस किया कि दुनिया की खेती (भारत की भी) आज चौराहे पर है और यह आकलन करने की जरूरत है कि कृषि विज्ञान, ज्ञान और प्रौद्योगिकी को कौन सी भावी दिशा अपनानी चाहिये। इस तरह विभिन्न देशों के 400 विशेषज्ञों ने तीन साल (2005–2007) तक दुनिया भर में सबसे बड़ा आकलन किया और इसके परिणामतः जो रिपोर्ट तैयार हुई उसे इंटरनेशनल असेसमेंट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस, नॉलेज एंड टेक्नोलॉजी फार डेवलपमेंट या आईएएएसटीडी रिपोर्ट कहा जाता है। यह देखते हुए कि ट्रांसजेनिक प्रौगिकी को अक्सर वर्तमान कृषि की समस्याओं का समाधान कहा जाता है इस रिपोर्ट में आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका पर भी गौर किया गया है खास तौर पर पारजैविक या जीएम प्रौद्योगिकी की।

आईएएएसटीडी (भारत ने भी इसमें दस्तखत किये हैं।) ने पाया है कि कृषि –पर्यावरणीय नजरिया विश्व की खाद्य समस्या का टिकाऊ समाधान प्रदान करता है न कि जीएम या जीन परिवर्धन । आईएएएसटीडी रिपोर्ट में पुष्टि की गयी है कि किसानों को नवाचारी ढंग से मिट्टी, पानी, जैविक संसाधन, कीट बीमारियां, जीन विविधता के प्रबंधन तथा सांस्कृतिक तौर पर उपयुक्त तरीके से प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में सशक्त बनाना विकास और निरंतरता के लक्ष्यों को हासिल करने में कारगर होगा। सघन और मोटे तौर पर एकल खेती, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और ताकतवर निजी बीज कंपनियों के स्वामित्व वाले बीजों जैसे आदानों पर आधारित रासायनिक खेती के विपरीत यह पर्यावरणीय टिकाऊ खेती के कुछ घटक हैं।

## पर्यावरणीय कृषि के वैश्विक अनुभव

भोजन के अधिकार (एग्रो इकोलॉजी एंड द राइट टू फुड) पर संयुक्त राष्ट्र के विशेष प्रतिनिधि ओलिवियर डि शुटर का कहना है कि आज की स्थिति तक कृषि पर्यावरणीय परियोजनाओं ने 57 विकासशील देशों में औसत फसल पैदावार में 80 प्रतिशत की वृद्धि दिखायी है। जिसमें सभी अफ्रीकी परियोजनाओं में औसत वृद्धि 116 प्रतिशत है। 20 अफ्रीकी देशों में हाल में संचालित परियोजनाओं ने 3 से 10 साल की अवधि में दोगुनी फसल पैदावार दिखायी है।

व्यापार एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (अंकटाड) ने अपने ट्रेड एंड एनवायरनमेंट रिव्यू 2013 में सिफारिश की है कि अमीर और गरीब देशों में समान रूप से खेती एकल पद्धति की बजाय फसलों की ज्यादा किस्मों पर, खाद और अन्य आदानों के कम इस्तेमाल, छोटे किसानों को अधिक समर्थन तथा अधिक स्थानीय केन्द्रित उत्पादन और खाद्य उपभोग की ओर

परिवर्तित होनी चाहिये। रिव्यू में कई सतत पुनरुत्पादक उत्पादन प्रणालियों की अनुशंसा की गयी है जो छोटे किसानों की पैदावार में खासा इजाफा करता है तथा ग्रामीण विकास को बढ़ाता है।

पैदावार को बनाए रखने या उसे बढ़ाने की जैविक खेती की क्षमताओं को लेकर अक्सर सवाल पूछे जाते हैं । खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के मुताबिक खराब प्रबंधन वाली परंपरागत पद्धति से परिवर्तित होने पर प्राकृतिक संसाधनों के बेहतर प्रबंधन और चक्रण से जैविक पद्धतियां वास्तविक तौर पर कृषि उत्पादकता को तीव्र कर देती हैं। एफएओ रिव्यू के अनुसार जैविक खेती को आधुनिक परंपरागत खा़द्य प्राणाली कहा जा सकता है क्योंकि यह विविध फसल प्रणालियों, प्राकृतिक खा़द्य परिरक्षण और भंडारण एवं जोखिम निवारण रणनीति की परंपरागत खेती की विधियों जो कि परंपरागत तौर पर स्थानीय खाद्य जरूरतों को पूरा करती रही हैं उनको सुधारने के लिये वैज्ञानिक विवेचना का प्रयोग करती है। जैविक खेती के विभिन्न मॉडलों का उल्लेख करते हुए अध्ययनों के निष्कर्ष में कहा गया है कि इसमें मौजूदा कृषि व्यवस्था की तरह वैश्विक खाद्य आपूर्ति की क्षमता है लेकिन कम पर्यावरणीय नुकसानों के साथ। निष्कर्षों में कहा गया है कि वर्तमान विश्व आबादी के लिये प्रति व्यक्ति आधार पर काफी खाद्यान्न पैदा किया जा सकता है : 2640 और 4380 किलो कैलोरी/व्यक्ति/दिन तक। जैविक उत्पादन प्रणालियों में उत्पादकता प्रबंधन पर निर्भर है। अध्ययन बताते हैं कि निर्वाह खेती पद्धति में 180 प्रतिशत तक पैदावार में वृद्धि देखी गई है। कुल मिलाकर विश्व औसत जैविक पैदावार वर्तमान खाद्य उत्पादन स्तरों से 132 प्रतिशत अधिक निकाली गयी है।

जलवायु परिवर्तन के दौर में जैविक खेती की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह विविधता और अनुकूलन प्रबंधन पर जोर देती है जो मौसम से जुड़े जोखिमों को घटाता है। जैविक खेती में खनिज उर्वरकों का कम प्रयोग गैर परंपरागत ऊर्जा का इस्तेमाल भी घटाता है और कृषि संबंधी भूमंडल का तापमान बढ़ाने वाली ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी होती है। इसलिये न्यूनीकरण तथा अनुकूलन दोनों के लिये इसे अपनाना

बेहतर नजरिया है।

## पर्यावरणीय कृषि का भारत का अनुभव

भारत में भी दीर्घ अवधि अध्ययन यह दर्शाते हैं कि जैविक खेती की पैदावार परंपरागत खेती की पैदावार (सीआरआईडीए 2009) के समकक्ष है। देशभर में हजारों किसानों ने व्यक्तिगत तौर पर यह प्रदर्शित कर दिया है कि जैविक खेती, प्राकृतिक खेती और अन्य प्र्यावरणीय कृषि की खेती की पद्धति से सतत पैदावार, शुद्ध आय में वृद्धि और कम ऋणग्रस्तता हासिल हुई है। महाराष्ट्र ओर आंध्रप्रदेश के किसानों की खुदकुशी वाले इलाकों में ऐसी कोई रिपोर्ट नहीं मिली है कि जैविक किसानों को खुदकुशी करनी पड़ी हो।

जैविक खेती और पर्यावरणीय खेती करने वालों की सफलता की कहानियां पूर्व में अलग–थलग मामले और कुछ नवाचारी किसानों के कौशल पर निर्भर ऐसे मॉडल बताकर खारिज कर दी गयीं जिन्हें कि मापदंडों में नहीं कसा जा सकता। विदर्भ में एक स्वयंसेवी संगठन धारामित्र ने कपार्ट से सहायता प्राप्त अध्ययन में 400 किसानों को अपनी

एक एकड़ कृषि भूमि पर तीन साल तक पर्यावरणीय पद्धतियों को अपनाने का  प्रशिक्षण दिया। अध्ययन में पाया गया कि उनकी शुद्ध आय किसान की बाकी जमीन की आय की तुलना में 25 से 80 प्रतिशत तक बढ़ गयी और पैदावार समकक्ष स्तर पर रही। धान सघनीकरण प्रणाली जिसका देश में लगातार विस्तार हो रहा है वह भी यह प्रदर्शित कर रही है कि कृषि पर्यावरणीय विधियों से पैदावार में वृद्धि कायम रखते हुए संसाधनों का इस्तेमाल कम हो सकता है।  धान सघनीकरण प्रणाली और अन्य फसलों जैसे गेहूं, गन्ना और रागी के लिये उसके भिन्न रूपों, जैविक खेती और बिना लागत की प्राकृतिक खेती के तहत लाखों एकड़ जमीन से किसानों को अच्छा उत्पादन और अधिक आमदनी हासिल हुई है।

पर्यावरणीय टिकाऊ खेती में सबसे बड़ी सफलता आंध्रप्रदेश में रही है। 2004 में आंध्रप्रदेश के 12 गांवों ने गैर कीटनाशक प्रबंधन अपना कर पर्यावरणीय खेती की ओर पहला कदम बढ़ाया। एक गांव में ही केवल कीटनाशकों के पेटे 60 लाख रुपये की राशि की बचत ने आंध्रप्रदेश सरकार के ग्रामीण विकास विभाग, विश्व बैंक और अपने सहयोगी संगठनों के नेटवर्क के साथ सेंटर फार सस्टेनेबल एग्रीकल्चर जैसे संगठनों के बीच सहयोगी नजरिया अपनाने को प्रेरित किया। सामुदायिक प्रबंधित टिकाऊ खेती (सीएमएसए) अब 30 लाख एकड़ तक फैल गई है। यह विश्व की सबसे बड़ी राज्य समर्थित पर्यावरणीय कृषि परियोजना बतायी जाती है।यह किसानों को कर्ज के जाल से बाहर निकाल रही है, साहूकारों के पास गिरवी रखी जमीन वापस दिला रही है और उसने आंध्रप्रदेश को ऐसा राज्य बना दिया है जिसने कीटनाशकों और रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल बड़ी मात्रा में घटा दिया है। सीएमएसए में उगाई गयी प्रमुख फसलों की पैदावार की तुलना सर्वेक्षणों के द्वारा परंपरागत कृषि से की गयी। परंपरागत खेती से सीएमएसए में आये पांच जिलों के  400 किसानों

के खेतों में धान, मिर्च, मूंगफली, कपास और लाल चने की फसलों की पैदावार का अध्ययन किया गयां। पाया गया कि गैर कीटनाशक प्रबंधन के साथ उनकी पैदावार या तो वही रही या उसमें मामूली वृद्धि हुई।

ऐसे कार्य को प्रसारित करना खेती की आजीविका और टिकाऊ खेती की स्थिति को सुधारने तथा किसान को कृषि आदान निर्माता तथा व्यापारियों के चंगुल से मुक्त कराने के प्रति समर्पित किसी भी सरकार की प्राथमिकता होनी चाहिये। प्य्रावरणीय सुदृढ़, स्वावलम्बी और राजय समर्थित विकल्पों के अभाव में किसान इन्हीं निर्माता और व्यापारियों पर निर्भर हो गया है जो आज के नये वर्ग के साहूकार और कृषि सूचना प्रणाली बन गये हैं।

हरेक राज्य में ऐसे अग्रणी प्रयोगकर्ता हैं जो पर्यावरणीय कृषि को ग्रामीण समृद्धि का नया प्रतिमान बनाने में सहायता कर सकते हैं। जैविक खाद्य की मांग किसी भी उत्पाद के लिये सबसे तेजी से बढ़ती मांगों में से है क्योंकि उपभोक्ता रसायनयुक्त खाद्य के दुष्प्रभावों और जीन परिवर्धित (जीएम) खाद्य से सेहत के संभावित खतरों के प्रति ज्यादा से ज्यादा चिंतित हो रहा है। इस मौके का लाभ उठाने के लिये भारत आदर्श स्थिति में है। अशरिंग अ न्यू एरा आफ प्रासपेरिटी (2011) शीर्षक से पश्चिम बंगाल पर केन्द्रित एसोचैम के अध्ययन के अनुसार भारत में जैविक उत्पादों की मांग सालाना 40 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। इसके 2015 तक मौजूदा 2500 करोड़ रुपये के स्तर से बढ़कर दस हजार करोड़ रुपये हो जाने की संभावना है। रिपोर्ट में अनुमानित है कि जैविक खेती में प्रति हेक्टेयर 30 प्रतिशत अधिक रोजगार मिलता है। जैविक खेती अपनाने से अगले पांच साल में खेती में पांच लाख अतिरिक्त रोजगार पैदा किये जा सकते हैं । इसके अलावा अगर भंडारण, प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन, पैकेजिंग

तथा विपणन सुविधाओं को मिला लें तो 6 लाख अतिरिक्त रोजगार पेदा किये जा सकते हैं। जैविक खेती अपनाने से किसान की प्रति व्यक्ति आय 250 प्रतिशत बढ़कर रु. 15680 प्रति माह हो सकती है।

भारत जैसे देश जहां रासायनिक आदान का स्तर कम है और जहां जीएम का प्रदूषण नहीं है भी निर्यात बाजार का लाभ लेने के लिये आदर्श स्थिति में हैं। यहां यह गौर करना चाहिये कि जीएम का मार्ग और जैविक का मार्ग संगत नहीं है – यूरोप को अमेरिकी चावल ओर गेहूं के निर्यात में जीएम के खेतों पर प्रयोग के गैर इरादतन परिणामस्वरूप जीएम चावल और गेहूं की मामूली मात्रा मिल जाने से आयात पर पाबंदी गला दी गई जिससे अमेरिकी किसानों को लाखों डॉलर का नुकसान उठाना पड़ा ।

## जीएम फसलें और पर्यावरणीय कृषि

पर्यावरणीय कृषि को अपनाने में एक प्रमुख बाधा जीएम फसलों की ओर से किये जाने वाले अप्रमाणित दावे, वादे और हवाबाजी हैं। वास्तविक सहभागी कारकों का विश्लेषण किये बिना उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि का श्रेय जीएम प्रौद्योगिकी को दे दिया गया है जैसा कि भारत में बीटी कॉटन के मामले में हुआ है। कपास का उदाहरण लें, भारत सरकार बीटी कॉटन की अयोग्य सफलता का दावा कर रही है, लेकिन कपास सलाहकार बोर्ड के आंकड़े बताते हैं कि कपास की पैदावार 2000–2001 में 278 किलोग्राम से 2004–05 में 470 किलोग्राम हो गयी जब कुल उगाई जाने वाली कपास में से बीटी कॉटन छह प्रतिशत से भी कम थी। 2012 तक जब बीटी कॉटन कुल जमीन के 90 प्रतिशत तक फैल गयी तब पैदावार सिंचाई सुविधा बढ़ने (केवल सौराष्ट्र में एक लाख से अधिक

चैकडैम बनाये गये) के बावजूद 481 किलोग्राम तक ही बढ़ी। अमेरिका में 1996 में आने के 18 साल बाद भी जीएम प्रौद्योगिकी के अधीन विश्व की महज चार प्रतिशत जमीन ही है और विकसित विश्व में भी इसको बढ़ोतरी नहीं हो रही है। दुनिया के अधिकतर देशों ने इसको ठुकरा दिया है या कड़े नियमों में रखा है। यह जीएम फसलों के सेहत, पर्यावरण और खेती पर प्रतिकूल परिणामों के बढ़ते वैज्ञानिक प्रमाणों का नतीजा है। किसानों के लिये बीज के कम होते विकल्पों और जीएम से कृषि उत्पाद के संक्रमित होने पर निर्यात पर विपरीत असर को भी भली प्रकार समझा गया है।

जीएम प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल अधिकांशतः फसलों को खरपतवारनाशक छिड़काव का प्रतिरोधी बनाने के लिये किया जाता है। यह चार देशों (अमेरिका, कनाडा, ब्राजील और अर्जेन्टीना) के लिये सुविधाजनक हो सकता है (हालांकि वांछनीय नहीं) जहां दुनिया भर की जीएम फसलों की 80 प्रतिशत हिस्सा हिस्सेदारी है क्योंकि जहां सैकड़ों एकड़ में खेत हैं वहां मानव के द्वारा निंदाई संभव नहीं है। लेकिन भारत में यह प्रौद्योगिकी अनावश्यक और अवांछनीय है जहां औसत खेत रकबा तीन एकड़ से भी कम है और निंदाई के काम में लाखों महिलाओं को रोजगार मिलता है। यूरोपीय पर्यावरण एजेंसी की 2013 की रिपोर्ट में प्रकाशित शोध पत्र के अनुसार जीएम फसल बहुत अधिक उत्पादन वाली उच्च आदान एकल कृषि प्रणाली के लिये तो उपयुक्त हैं लेकिन बाह्य और गैर परंपरागत आदानों पर निर्भरता में व्यापक तौर पर गैर टिकाऊ हैं। जीएम फसलों पर प्रदत्त बौद्धिक संपदा अधिकार और नवाचार की संभावनाओं के लिये खुलने की बजाय ज्यादातर बंद हो जाता है । इसमें आगे कहा गया है कि विज्ञान आधारित कृषि पर्यावरणीय विधियां सहभागिता पर आधारित होती हैं और इस तरह से सृजित होती हैं कि वे कृषि के बहुआयामी कार्यों खाद्य उत्पादन, जैव विविधता को बढ़ाने और पारिस्थितिकी तंत्र सेवा तथा

सामुदायिक सुरक्षा प्रदान करने की भूमिका में उपयुक्त तरीके से समाहित हो जाती हैं।

## पर्यावरणीय टिकाऊ खेती के लिये कार्ययोजना : आशा का प्रस्ताव

यह समय है कि भारतीय नीति निर्माता खेती को लेकर अपने नजरिये में निर्णायक परिवर्तन करें और पूरे दिल से पर्यावरणीय टिकाऊ खेती को निम्न तरीके से समर्थन दें –:

–समयबद्ध, कार्यक्रमबद्ध तरीके से पर्यावरणीय खेती को बढ़ावा देना –: हरित क्रान्ति के समय से विद्यमान सहायता प्रणाली प्रत्यक्ष तौर पर रसायन सघन और बाहरी आदान आधारित खेती की ओर झुकी हुई ऐसे में सरकार को पर्यावरणीय टिकाऊ खेती की ओर व्यापक पैमाने पर ले जाने के लिये सुनियोजित कार्यक्रबद्ध नजरिया अपनाने की जरूरत है। आशा एक प्रगतिवादी नजरिया अपनाने की सलाह देती है क्योंकि रातों रात बदलाव व्यवहारिक नहीं है। दो वर्ष के लिये व्यापक प्रायोगिक योजना बनाई जानी चाहिये जिसके बाद सुनियोजित अभियान के तहत प्रत्येक वर्ष खेती की जमीन का दस प्रतिशत पर्यावरणीय खेती में लाया जाना चाहिये। इसके लिये रासायनिक कृषि के खिलाफ व्यापक अभियान, कृषि विभाग के कर्मचारियों के मैदानी अमले को शामिल करते हुए व्यापक क्षमता निर्माण व्यवस्था बनाना , किसान से किसान विस्तार, किसान प्रयोग स्कूल, विभिन्न उपयुक्त स्वरूपों में सूचना और ज्ञान का प्रचार प्रसार तथा इस बदलाव मे महिला किसानों को अग्रणी रखा जाना चाहिये।

– पर्यावरणीय कृषि को समर्थन देने के लिये प्रोत्साहन देना –: जैविक किसानों और कम वर्षा वाले इलाकों के किसानों को मिट्टी की उर्वर

क्षमता, जल संसाधनों और विष रहित खाद्य प्रणाली का संरक्षण कर पर्यावरण हितैषी कार्य के लिये विशेष बोनस दिया जाना चाहिये। वर्तमान में रासायनिक कृषि को दिये जा रहे अनुदान को जैविक कृषि को अपनाने वालों को प्रोत्साहन के रूप में दिया जाना चाहिये। श्रम सघन कार्यों को अनुदान देने के लिये अलग तंत्र की स्थापना की जानी चाहिये। ऐसी समर्थन प्रणाली में निशुल्क प्रमाणन प्रणाली, पृथक बाजार मानदंड और पहचान परिरक्षण के लिये प्रसंस्करण सुविधाओं सहित जैविक उत्पाद के लिये विपणन सहायता महत्वपूर्ण घटक होगी। जैविक विपणन लिये दी गयी सहायता मुख्य तौर पर किसान समूहों को नकद प्रवाह की आसानी और अधोसंरचना से जुड़े मसलों (भंडारण, प्रसंस्करण, परिवहन आदि) के लिये दी जानी चाहिये।

–बारानी खेती और सूखा अनुकूलन पर विशेष ध्यान : यहां विविध फसलीय पद्धति  पर ध्यान देने, संरक्षित सिंचाई सुनिश्चित करने और पशुपालन आधारित आजीविका मजबूत करने की जरूरत है। पानी के बेहतर इस्तेमाल वाली फसलों (ज्वार, दलहन, तिलहन) और उत्पादन पद्धतियों (एसआरआई, सूक्ष्म सिंचाई आदि)  को उपयुक्त मूल्यन प्रणाली, विपणन समर्थन और विभिन्न खाद्य योजनाओं से जोड़ने सहित प्रोत्साहित और समर्थन देने की जरूरत है।

– कृषि अनुसंधान की कम से कम 50 प्रतिशत निधि तुरंत सहभागिता नजरिये से होने वाली पर्यावरणीय खेती पर किसान को सशक्त बनाने वाले अनुसंधान को आवंटित की जाये, एनएआरएस का एजेंडा कार्पोरेट द्वारा संचालित उच्च आदान की सघन प्रौद्योगिकी से किसान की अगुवाई वाली टिकाऊ प्रौद्योगिकी की ओर मोड़ा जाये जिसमें कम जोत वाले और महिला किसानों पर विशेष फोकस हो। इस संदर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि एनएआरएस संस्थानों को लोकतांत्रिक तथा खेती की निरंतरता को लेकर जवाबदेह बनाया जाये। परंपरागत लागत लाभ विश्लेषण के साथ सभी

अनुसंधान परिणामों के आकलन के लिये सतत सूचकांक का उपयोग किया जाना चाहिये। जैविक उत्पादन परिस्थितियों में बीज ब्रीडिंग की जानी चाहिये जिससे इस तरह का बीज जैविक किसानों के लिये उपलब्ध हो सके।

– लचीली प्रणालियों, स्थानीय तौर पर अपनाई किस्मों और जैविक विविधता में वृद्धि के साथ पर्यावरणीय खेती पद्धतियों को केन्द्रित कर, जैविक खेती को जलवायु परिवर्तन से मुकाबले की प्रमुख रणनीति बनाया जाये। यह जलवायु परिवर्तन के लिये सर्वश्रेष्ठ अनुकूलन होगा। अध्ययनों में देखा गया है कि तथाकथित क्लाइमेटप्रूफ जीएम फसलें कम सफल रही हैं।

–सभी श्रेणी–1 और श्रेणी–2 के कीटनाशकों को भारत में प्रतिबंधित किया जाये और अन्य को समयबद्ध तरीके से समाप्त किया जाना चाहिये। ऐसे कीटनाशक जो दूसरी जगहों पर प्रतिबंधित हैं खास तौर पर कैंसर, विरूपता और अंतःस्राव जैसी बीमारियों के लिये जिम्मेदार माने जाने के कारण उन्हें भारत में तुरंत प्रतिबंधित करने की जरूरत है। ऐसे रसायनों के प्रतिकूल प्रभावों को लगातार सामने आ रहे प्रमाणों के साथ ही गैर कीटनाशक प्रबंधन (एनपीएम) एवं प्रभावी ढंग से कीटों और बीमारियों का प्रबंधन करने वाली अन्य पर्यावरणीय खेती पद्धतियों (विविधता आधारित फसल पद्धतियों के साथ) की कामयाबी के संदर्भ में यह महत्वपूर्ण हो गया है।

रासायनिक उर्वरकों पर अनुदान तुरंत खत्म किया जाना चाहिये और इस तरह से बचने वाली धनराशि (2011–12 में रुपये 70,000 करोड़) का इस्तेमाल प्र्यावरणीय खेती करने वाले किसानों को प्रोत्साहन देने में करना चाहिये। इसमें बायोमास और पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने के लिये

पेड़ लगाने सहित जैविक उर्वरकों के स्थानीय उत्पादन को शमिल किया जाना चाहिये।

–जीएम फसलों के खुले खेतों में प्रयोगों और वाणिज्यिक रिलीज को स्थगित करने की घोषणा की जानी चाहिये। जैसा कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा नियुक्त तकनीकी विशेषज्ञ समिति और कृषि पर स्थायी संसदीय समिति की सिफारिशों में कहा गया है।

उपरोक्त सभी यह सुनिश्चित करेंगे कि कम जोत के किसानों की आजीविका व्यवहारिक और सतत बनी रहे।

———————————————————————————